वाराणसी: जैन तीर्थ

●

लेखक

भँवरलाल नाहटा

●

प्रकाशक :

महेन्द्र सिंघी

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७

वीर निर्वाण सम्वत २५०२

मूल्य—७५ पैसे

दो शब्द

वाराणसी भारत के उन महानगरों में हैं जिनका अतीत और वर्त्तमान दोनों ही महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली है। यह पवित्र तीर्थ है, विद्या और कला का केन्द्र हैं, इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सभी दृष्टि से उच्चतम है। बिहार प्रान्त के सभी जैन तीर्थों के इतिहास प्रकाशन के पश्चात् हमारा ध्यान उत्तर प्रदेश के महातीर्थ की ओर गया और कम्पिलपुर का इतिवृत्त प्रकाशित करने पश्चात् वाराणसी विषयक पुस्तिका को कुशल निर्देश के जनवरी १६७६ के पुनर्मुद्रण रूप में पाठकों को समर्पित करते अत्यन्त हर्ष होता है।

तीर्थभक्त कला-प्रेमी श्री महेन्द्रकुमार सिंघी ने यह इतिवृत्त प्रकाशित कर जनसाधारण में पहुँचाकर ज्ञानप्रचार और तीर्थों की बड़ी सेवाकी है।

वाराणसी के कुछ प्राचीन स्तवन देने का विचार था पर सं० १६६६ में रचित जयनिधानोपाध्याय का स्तवन ही इस समय उपलब्ध था जिसे अन्त में प्रकाशित किया जा रहा है।

वाराणसी और उसके आस-पास के तीर्थों को गत दो सौ वर्षों में सुव्यवस्थित रखने का श्रेय उ० श्री हीरधर्म-कुशलचन्द्र गणि—बालचन्द्राचार्य—नेमिचन्द्रसूरि—हीराचन्द्रसूरि जी की विद्वद् परम्परा को हैं जिनका उपाश्रय ज्ञानभंडार व गद्दी रामघाट के बड़े मन्दिर जी से संलग्न है। अधिक जानने के लिए यतिवर्य श्री मणिचन्द्र जी कृत श्री कुशलचन्द्रसूरि पट्टप्रशस्ति (श्लोक २८६) देखना चाहिए। वाराणसी के राजा वच्छराज नाहटा, राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद आदि जैन परिवारों के साथ-साथ नंदिवर्द्धनसूरिकृत स्तवन से ध्वनित होता है कि कम्पिलपुर तीर्थोद्धारक लखनऊ के बरडिया श्री दयाचन्द की सेवाएँ भी उल्लेखनीय थीं।

—भँवरलाल नाहटा

वाराणसी पार्श्वनाथ स्तवनम्

पास जिणेसर वंदियइ, जसु मुख पूनिमचंदो रे।
सामल वरण सुहामणउ, पेखत होइ आणंदो रे ॥१॥ पा० ॥
प्राणतकल्प थकी चवी, वामा उयरइ हंसो रे।
चैत्र बहुल चउथी दिनइ, अवतरियउ जगि हंसो रे ॥२॥ पा० ॥
पोष दशमी दिन सामली, जायउ पास कुमारो रे।
त्रिभुवनि हुओ वधामणो, आससेण हरख अपारो रे ॥३॥ पा० ॥
वामा राणी नंदनू, सोहइ नव कर काया रे।
रूपि अनोपम दीपता, सोभागी जिनराया रे ॥४॥ पा० ॥
पोष किसण इग्यारसइं, लीधउ संजम भारो रे।
गाम नगरि पुरि विहरता, करता उग्र विहारो रे ॥५॥ पा० ॥
घाति करम खय चिहुँतणइ, जिनजी केवल पामी रे।
चउथि बहुल दिन मधुमासइ, सेवइ सुरनर धामी रे ॥६॥ पा० ॥
ऊजल अठमो वासरइं, श्रावण मासि सुहावइ रे।
सिरि समेतशिखर चढी, शिव रमणी जिन पावइ रे ॥७॥ पा०॥
पूरव देशि वाणारसी निधिरस रस ससि (१६६९) मानइ रे।
पास जिणंद जुहारिया, संवच्छरि इक तानइ रे ॥८॥ पा० ॥
अरि करि हरि जल केसरी, रोग जलण भय जाए रे।
पास जिणेसर ध्यावतां, सुख संपति घरि थाए रे ॥९॥ पा०॥
जयनिधान वाचक भणइ, पास चरण चित लाई रे।
काय अनइ वचनइं करी, अहनिसि तुम्ह सेवोभाई रे ॥१०॥ पा० ॥

—:०:—

बनारस के जैन मन्दिर

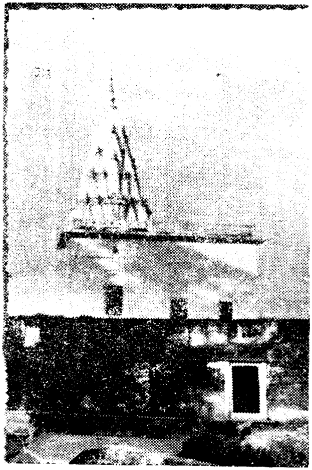

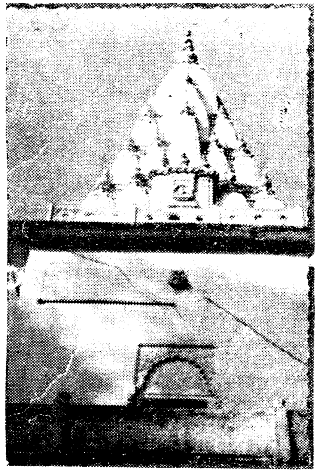

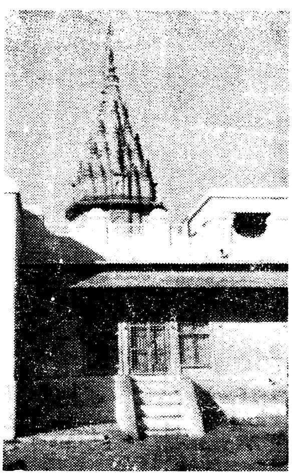

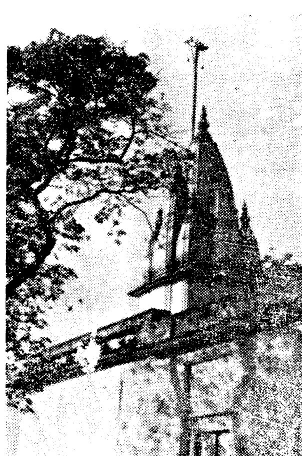

वाराणसी : जैन तीर्थ

भारत के प्राचीनतम, समृद्ध और महिमाशाली नगरों में वाराणसी का नाम सर्वोपरि है। यहाँ के कला-कौशल, विद्या केन्द्र, व्यापार और तीर्थभूमि की पावनता के कारण सदा से जन-मानस का इसके प्रति आदर-भाव रहा है। जैनागमों में वर्णित साढा पचीस आर्य देशों में यह काशी देश की राजधानी और अनेक महापुरुषों की लीला भूमि थी। जैन धर्म के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की तो यह खास जन्म-भूमि ही है और निकटवर्त्ती सिंहपुरी ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ और चन्द्रावती आठवें तीर्थंकर चन्दाप्रभु भगवान की जन्मभूमि है। इस प्रकार चार तीर्थंकरों के च्यवन-जन्म-दीक्षा और केवलज्ञान—सोलह कल्याणकों से वाराणसी का सम्बन्ध है। इन चारों जिनेश्वरों का निर्वाण सम्मेतशिखर महातीर्थ में हुआ है। ऐतिहासिक महापुरुष भगवान पार्श्वनाथ ईसा पूर्व नौवीं शताब्दी में यहाँ जन्मे थे। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में ही गौतम बुद्ध ने दीक्षा ली थी परन्तु कठिन निग्रन्थ चर्या से अरति पाकर मध्यम मार्ग बौद्ध धर्म का प्रवर्त्तन किया ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। बौद्ध पिटकों में भी इसी प्रदेश में गौतम बुद्ध के जिन निग्रंथों के परिचय में आने का उल्लेख पाया जाता है वे निग्रंथ भगवान पार्श्वनाथ की ही शिष्य परम्परागत थे। जैनागमों में पार्श्वापत्य नाम से उनका परिचय मिलता है। इस प्रकार अति प्राचीन-प्रागैतिहासिक काल से जैनों का सम्बन्ध इस नगरी से है और जैन, बौद्ध और वैदिक संस्कृति का केन्द्र यह काशी जनपद रहा है। इस की राजधानी वाराणसी वरणा और असी नामक नदियों के संगम स्थल को उजागर करने वाले नाम को धारण किए हुए है।

भगवान पार्श्वनाथ के पिता महाराजा अश्वसेन जैन श्रमण धर्मानुयाई थे। उनके महलों में बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की बरात और पशु बाड़े को देखकर करुणार्द्र अभिनिष्क्रमण के भावों के भित्ति-चित्र बने हुए थे जिन्हें देखकर ही पार्श्वनाथ वैराग्य प्राप्त होकर दीक्षित हुए थे। भगवान महावीर

और उनके पश्चात् भी कई शताब्दियों तक वाराणसी में जैन धर्म का वर्चस्व रहा था। चौदहवीं शताब्दी में रचित श्रीजिनप्रभसूरिजी के तीर्थकल्प के अनुसार विश्वनाथ के मन्दिर में चन्द्रप्रभ चतुर्विंशति जिनपट्ट एवं बाद में भी रुद्रालयों में, ब्राह्मणों के घरों व वृक्षों के नीचे असंख्य जिन प्रतिमाओं की अवस्थिति का वर्णन जैन धर्म की प्राचीन गौरव स्मृति और तत्कालीन अत्यल्य वर्चस्व सूचित करता है। जिनालय शिवालय बन गए और यवन-काल में तो जैन और वैदिक देव मन्दिरों ने मस्जिद का रूप धारण कर लिया था। राजघाट आदि स्थलों से प्राप्त पुरातत्त्व सामग्री एवं मगध-राजगृह की भाँति यहाँ भी शंख लिपि का अभिलेख संप्राप्त है जिसे अद्यावधि लिपि विशेषज्ञ पढ़ने में असमर्थ रहे हैं, वाराणसी की प्राचीनता के प्रबल प्रमाण हैं।

खरतर गच्छ गुर्वावली में लिखा है कि कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्रसूरि जी की आज्ञा से वाचनाचार्य राजशेखर ने सं० १३५२ में नालन्दा—बड़गाँव पधार कर वाराणसी, कोशाम्बी, अयोध्यापुरी आदि समस्त तीर्थों की यात्रा कर विहार में चौमासा किया था।

श्री जिनप्रभसूरिकृत वाराणसी तीर्थ-कल्प में जैनागमों में आये हुए वाराणसी सम्बन्धी कथानकों एवं इतर वृतान्तों का सुन्दर संकलन है। इससे तत्कालीन वाराणसी के इतिवृत्त पर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है अतः यहाँ इस कल्प का अनुवाद दिया जा रहा है।

वाराणसी नगरी कल्प (अनुवाद)

तत्त्व बतलाने वाले और सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करने वाले श्री सुपार्श्वनाथ और श्री पार्श्वनाथ को नमस्कार करके उत्तम कल्पनाओं से परिपूर्ण वाराणसी तीर्थरत्न का कल्प कहता हूँ।

इसी दक्षिणार्द्ध भरत के मध्य खंड में काशी जनपद के अलङ्कार स्वरूप उत्तरवाहिनी, त्रिदशवाहिनी (गङ्गा) से अलंकृत धन-कनक-रत्न समृद्धा वाराणसी नामक नगरी अद्‌भुत गौरव की निधान है। वरणा और असि नामकी दोनों ही नदियाँ यहाँ गंगा में आकर मिलने से यह वाराणसी नाम निरुक्ति से प्रसिद्ध है।

यहाँ सातवें जिनेश्वर श्री सुपार्श्वनाथ ने इक्ष्वाकु नरेश्वर प्रतिष्ठ की रानी पृथ्वीदेवी की कोख में अवतरित होकर जन्म लिया। तीनों लोक में जिनके यश का डंका बजा ऐसे स्वस्तिक लांछन वाले, दो सौ धनुष की कंचनवर्णी काया वाले प्रभु ने क्रमशः राज्य सुख अनुभव कर, सांवत्सरिक दान देकर

सहस्राम्रवन में दीक्षा ली। उन्होंने नौ मास पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में विचरण कर केवलज्ञान प्राप्त किया और सम्मेतशिखर गिरि पर मुक्त हुए।

तेईसवें जिनेश्वर पार्श्वनाथ इक्ष्वाकु वंशी राजा अश्वसेन के पुत्र और वामादेवी माता की कोख से जन्मे थे। उनका सर्प लांछन व नौ हाथ का ऊँचा नील वर्ण वाला शरीर था। पार्श्वनाथ ने राजकुमार अवस्था में ही आश्रम पदोद्यान में चारित्र लेकर केवलज्ञान प्रकट किया और उसी समेत शिखर गिरि पर शैलेसी करण करके सिद्ध हुए। इन्हीं भगवान ने कुमारावस्था में मणिकर्णिका पर पञ्चाग्नि तप करने वाले कमठ ऋषि की भविष्य में होने वाली विपत को जानते हुए भी काष्ठ के अन्दर जलती हुई ज्वालाओं से अधजले साँप को दिखा कर माता के साथ जनता के कुपथ का भी निरसन कर दिया था।

इसी नगरी में काश्यप गोत्र वाले चतुर्वेदी षट् कर्म कर्मठ और समृद्धिशाली युगल भ्राता जयघोष और विजयघोष नाम के द्विज श्रेष्ठ थे। एक बार जयघोष गंगा में स्नान करने गया और वहाँ पर साँप के द्वारा ग्रसे जाते हुए मैंढक को देखा और सर्प को नेउले के द्वारा उठा कर भूमि पर डाला हुआ देखा। नेउला सर्प को दबा कर बैठा था और सर्प उस अवस्था में भी मैंढक का आस्वादन कर रहा था। मैंढक चिल्ला रहा था और सर्प भी चीत्कार कर रहा था। इसे देखकर जयघोष प्रतिबोध पाया और दीक्षा लेकर क्रमशः एक रात्रि की प्रतिमा स्वीकार कर विचरते हुए पुनः इसी नगरी में आया। मासक्षमण के पारने के दिन उसने यज्ञपाटक में प्रवेश किया। वहाँ पर भिक्षा न देने की इच्छा वाले विप्रों ने उन्हें प्रतिषिद्ध किया। उसने श्रुत में कही हुई अभिचर्या का उपदेश देकर भाई और अन्य विप्रों को प्रतिबोध दिया। भाई विजयघोष ने वैराग्यवान होकर दीक्षा स्वीकार की। दोनों बन्धु मोक्ष गए।

यहाँ नन्द नामक नाविक ने तरपण्य नामक पशु-पक्षी विशेष को मारने की इच्छा से मुमुक्षु धर्मरुचि की विराधना की। उनके हुंकार से भस्म होकर क्रमशः सभा में गृह कोकिला, अमृत—गंगा के तीर पर हंस और अंजनगिरि पर सिंह के भव पाये। और उन्हीं अनगार की तेजो-लेश्या से मर कर इसी नगरी में ब्राह्मण हुआ और फिर मर कर राजा हुआ। राजा को जातिस्मरण—पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ और उसने समस्या रूप आधा श्लोक बनाया। इसी दिन वहाँ आये हुए मुनिराज द्वारा समस्या पूर्त्ति करने से उन्हें पहिचान कर

अभय याचना पूर्वक क्षमा माँगी और उनके उपदेश से परम श्रावक हो गया। धर्मरुचि क्रमशः सिद्धि को प्राप्त हुए। वह समस्या यह थी—

गंगाए नाविओ नन्दो सभाए घर कोइलो
हंसो मयंग तीराए सीहो अंजण पव्वए—१
वाराणसी ए वडुओ राया तत्थेव आयओ
एएसिं घायगो जो उ सो इत्थेव समागओ—२

अर्थात्—गंगा में नंद नाविक, सभागृह में गृह कोकिला और मयंग तटपर हंस तथा अंजन पर्वत पर सिंह, फिर वाराणसी में ब्राह्मणपुत्र और वहीं पर राजा बना। इसका जो घातक बना वह भी यहाँ आ गया।

इसी नगरी में संवाहन राजा के एक हजार कन्याओं से अधिक होने पर भी शत्रु राजा की सेना के द्वारा घिरी हुई नगरी का रानी के गर्भ में रहे हुए अंगवीर ने रक्षा की।

यहाँ पर बल नामक मातंग ऋषि ने मृत गंगा के तीर पर जन्म पाया और तिन्दुक उद्यान में रहे। और गण्डी तिन्दुकयक्ष को अपने गुण गणों से आकृष्ट हृदय बनाया। कोशलिक राजा की पुत्री भद्रा ने उन मल क्लिन्न ऋषि को देख कर उनपर थूक दिया। तदन्तर उसी यक्ष ने मुनि के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके साथ विवाह किया। मुनि ने उसे छोड़ दिया तब रुद्रदेव ने उसे यज्ञ-पत्नी बनाया। मासक्षमण के पारणे में भिक्षा के लिए आये हुए मातंग मुनि की हँसी और कदर्थना करते देखकर भद्रा ने उन्हें पहचान लिया और ब्राह्मणों को बोध दिया। ब्राह्मणों ने क्षमा मांगी और भोजनादि प्रदान किया। देवताओं ने गन्धोदक वृष्टि-पुष्पवृष्टि दुन्दुभिवादन और वसुधारा वृष्टि की।

निम्नोक्त दो गाथाएँ वाराणसी से सम्बन्धित है :—

वाणारसी पकोट्ठए पासे गोवालि भद्दसेणेय
णंदसिरी पउमद्दह रायगिहे सेणिए वीरे १
वाणारसी य नयरी अणगार धम्मघोस-धम्मजसे
मासस्स य पारणए गोउल गंगा य अणुकंपा २

अर्थात्—वाराणसी के कोष्टक चैत्य में पार्श्वनाथ भगवान और गोवालि आर्या के पास भद्रसेन की पुत्री नंदश्री दीक्षित हो पद्मद्रह में उत्पन्न हुई, राजगृह में वीर प्रभु ने श्रेणिक को कहा।

वाराणसी नगरी में अणगार धर्मघोष-धर्मयश को मासक्षमण के पारणे में देव ने अनुकंपा से गंगा पार गोकुल दिखाया।

आवश्यक निर्युक्ति में इसके दो संविधान हैं। यतः—

इसी नगरी में भद्रसेन नामक जीर्ण सेठ था उसकी भार्या नंदा थी, उनके नंदश्री नामक विधवा पुत्री थी। एक वार यहाँ के कोष्टक चैत्य में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी समोसरे। नन्दश्री ने प्रव्रज्या ली। वह गोपाली आर्या को शिष्या रूप में समर्पित की गई। पहले तो वह उग्रविहार करती थी फिर शिथिल होकर हाथ-पाँव धोने लगी। साध्वियों के मना करने पर वह अलग वसति में रहने लगी और बिना आलोयणा किए मर के क्षुल्ल हिमवंत के पद्मद्रह में देव गणिका श्रीदेवी हुई व भगवान महावीर के राजगृह आने पर उनके आगे समवशरण में नाट्य विधि प्रदर्शित कर गई। अन्य लोग कहते हैं— हथिणी रूप में वात निसर्ग किया, श्रेणिक ने उसका स्वरूप पूछा तो भगवान ने उसकी पूर्व-भवकी अवसन्नता का वृतान्त बतलाया।

इसी नगरी में धर्मघोष-धर्मयश नामक दो अणगार वर्षाकाल चतुर्मास रहे। वे मासक्षमण मासक्षमण करते थे। अन्यदा चौथे पारणे में तीसरे प्रहर में विहार के लिए प्रस्थान कर सूर्यताप से आर्त्त प्यासे गंगा पार होते हुए अनेषणीय होने से मन से भी जल पीने की इच्छा नहीं की। देवता ने उनके गुणों से आकृष्ट हो गोकुल की विकुर्वणा की और गंगा पार होने पर दही आदि के लिए निमन्त्रित किए। उन ज्ञानियों ने उपयोग देकर यथार्थतः देवमाया जानकर प्रतिषेध कर दिया। देव ने उनके नगर की ओर जाते समय बादल विकुर्वण किए उन्होंने आर्द्र भूमि में शीतल वायु वहते चलकर गाँव पहुँच कर शुद्ध आहार लिया।

श्री अयोध्या में इक्ष्वाकु वंशी महानरेन्द्र त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र, उशीनर राजा की पुत्री रानी सुतारा देवी और पुत्र रोहिताश्व के साथ चिरकाल सुख अनुभव करते थे। एक वार सौधर्मेन्द्र ने देवसभा में उनके सत्व की प्रशंसा की। उसे अश्रद्धा करते हुए चन्द्रचूड़-मणिचूड़ नामक देव पृथ्वी पर आये। उनमें से एक ने वन वराह रूप बना कर अयोध्या के बाहर शक्रावतार चैत्याश्रम को संरम्भ पूर्वक भंग करने में प्रवृत्त हो गया। सिंहासन स्थित राजा हरिश्चन्द्र शूकर के आश्रम में किए उपद्रव को सुन कर वहाँ गया और बाणके प्रहार से उसे मार डाला। उसके सशरीर अन्तर्हित हो जाने पर अनिन्दित चरित्र वाला राजा ज्योंही उस प्रदेश में आया त्योंही अपने बाण से प्रहत हरिणी को और उसके गलित गर्भ को कांपते हुए देख कर कपिंजल और कुंतल नामक मित्रों के साथ इसका विचार किया। स्वयं को गर्भहन्ता सोचता हुआ प्रायश्चित ग्रहण करने के लिए कुलपति के पास आ नमस्कार कर आशीष ग्रहण

कर बैठ गया। इतने में ही वंचना नामक कुलपति-कन्या ने जोर से शोर मचाया और बोली—पिताजी! इस पापी ने मेरी मृगी को मार दिया है, उसके मरनेसे मेरा और मेरी माता का भी मरण होगा! पुत्री की यह बात सुनते ही कुलपति राजा पर कुपित हो गए। राजा ने कुलपति के चरणों में गिर कर कहा—प्रभो! मेरी सारी पृथ्वी ग्रहण करके मुझे इस पाप से मुक्त करें। वंचना के मरने से निवारणार्थ भी मैं एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा दूँगा! उसके मानने पर कौटिल्य ऋषि को साथ लेकर राजा अपने नगर आया फिर वसुभूति मंत्री और कुन्तल को सारा स्वरूप बतला कर कोश से लक्ष निष्क मंगाये। सागारक तापस ने स्मित पूर्वक कहा हमें समुद्र मेखला पर्यन्त सारी पृथ्वी दे दी, तो फिर हमारी वस्तु ही हमें देते हो यह कौन सा न्याय है? वसुभूति कुछ भी बोलने लगा तो कुलपति ने उसे शुक और कुन्तल को श्राप देकर शृगाल बना दिया। वे दोनों वन में रहने लगे। राजा ने महीने की अवधि माँगी और रोहिताश्व की अंगुली पकड़ कर सुतारा के साथ काशी की ओर चल पड़ा। क्रमशः इस नगर में पहुँच कर संस्था में रहा। वहाँ मस्तक पर तृण रख कर वज्र हृदय विप्र के हाथ रानी सुतारा देवी और कुमार को छः हजार स्वर्ण में बेच डाला। वह खांडना-पीसना आदि ग्रह कार्य करने लगी। पुत्र रोहिताश्व भी समिधा, पत्र, पुष्प, फलादि लाने लगा।

राजा का चित्त बड़ा चिन्तातुर था। कुलपति स्वर्ण मांगने के लिए आ पहुँचा। राजा ने उसे छः हजार स्वर्ण दिया। कुलपति ने राजा को क्रोध पूर्वक कहा—थोड़ा ही है! तब अंगारक बोला—राजन्! पत्नी और पुत्र को किस लिए बेचा? यहाँ के राजा चन्द्रशेखर से लक्ष स्वर्णमुद्रा क्यों नहीं मांग लेते! राजा ने कहा—हमारे घर में ऐसा नहीं होता। डोम के घर में भी नौकरी करके तुम्हें लक्ष स्वर्णमुद्रा दूँगा। तब काम करने में प्रवृत्त होने पर चाण्डाल ने उसे स्मशान रक्षा में नियुक्त किया। उसके पश्चात् उन देवों ने नगर में महामारि फैला दी एवं राजा के आदेश से मांत्रिक लोगों ने राक्षसी प्रवाद का आरोप लगा कर सुतारा को मण्डल में ला कर गधे पर चढ़ाया। जैसे शुक पावक में झंपापात करने पर भी न जला और स्मशान में वट की शाखा से लटकते हुए पुरुष को तथा तट पर रोती हुई सुन्दरी को देख विद्याधर के अपहार का वृत्त सुनकर उन्हें छुड़ाया और उसके स्थान में स्वयं नियुक्त होकर होम-कुण्ड में अपने ही मांस खण्ड दिये और जैसे कुण्ड में से निकले हुए मुख वाला शृगाल रोया था। तापस ने जैसा राजा का व्रण रोहण किया था और पुष्प ग्रहण करते हुए रोहिताश्व को निर्दय सर्प ने दश लिया था, उसका संस्कार करने के

लिए रानी आई और उससे राजा ने कफन मांगा था और जैसे सत्व परीक्षा के निर्वाह से प्रमुदित हुए देवताओं ने अपना रूप प्रकट किया और पुष्प-वृष्टि की। जयजय ध्वनि की। सब लोगों द्वारा—यह सात्विक शिरोमणि हैं, ऐसी प्रशंसा की गई और जिस प्रकार बहिर्मुख के मुख से वाराहादि से लेकर पुष्प वृष्टि पर्यन्त सब को दिव्य माया विलसित जान कर ज्योंही चित्त में चमत्कृत हुआ त्योंही स्वयं को अपनी नगरी अयोध्या की राजसभा में सपरिवार सिंहासन पर बैठा पाया। वह सुतारा देवी और कुमार रोहिताश्व के विक्रय से लेकर दिव्य पुष्प-वृष्टि पर्यन्त श्री हरिश्चन्द्र का चरित्र सत्व परीक्षा की कसौटी रूप इसी नगरी के अन्दर मनुष्यों को विस्मित करने वाला हुआ।

और जो काशी महात्म्य में प्रथम गुणस्थानियों ने कहा है कि—वाराणसी में कलि का प्रवेश नहीं होता और यहाँ मरने वाले कीट-पतंग-भ्रमर आदि एवं (जो-ब्राह्मण-स्त्री-बालकादि) चतुर्विध हत्या करने वाले अनेक पापात्मा मनुष्यादिभी शिव का शरण प्राप्त करते हैं। ऐसी युक्तिहीन बातें समझ कर हमारे लिए वह श्रद्धा करना दुःशक्य है फिर इस कल्प में कहने के लिए तो उपेक्षणीय है ही।

धातुर्वाद, रसवाद, खन्यवाद, और मन्त्र-विद्याप्रवीण, शब्दानुशासन, तर्क अलंकार, ज्योतिष चूड़ामणि, निमित्त शास्त्र साहित्यादि विद्यानिपुण पुरुष इस नगरी में परिव्राजकों, जटाधरों-योगियों और ब्राह्मणादि चारों वर्णों में ऐसे अनेक हैं जो रसिक मन वालों को प्रसन्न करते हैं। यहाँ सकल कला परिकलन कौतुहल वाले चतुर्दिगंत देशान्तर वासी जन दिखाई पड़ते हैं।

वर्तमान काल में यह वाराणसी चार भागों में बँटी हुई दिखाई देती है। जैसे :—१ देव वाराणसी—जहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है, उसमें पत्थर का जैन चतुर्विंशति पट्ट पूजा में रखा हुआ आज भी विद्यमान है। दूसरी राजधानी वाराणसी है जहाँ आजकल यवन लोगों का निवास है। तीसरी मदन वाराणसी है और चौथी विजय वाराणसी है। लौकिक तीर्थ तो इतने अधिक हैं कि उनकी संख्या करने में भी कौन समर्थ हो सकता है।

अन्तर्वन में दन्तखात तालाव के निकट श्री पार्श्वनाथ का चैत्य अनेक प्रतिमाओं से विभूषित है। यहाँ तालाव में निर्मल परिमल से भरे हुए, नाना जाति के कमलों की सुगंध युक्त भ्रमर समूह से संकुल हैं। इस नगरी में बानर और मृग-धूर्त्त लोग निर्भय विचरते हुए एकत्रित हैं। यहाँ से तीन कोश पर धर्मेक्षा नामका सन्निवेश है जहाँ अपने ऊँचे शिखरों से गगन को चूमने वाले गौतम बुद्ध का आयतन है। यहाँ से ढाइ योजन आगे चन्द्रावती नगरी है

जहाँ पर अखिल भुवनजनों को तुष्ट करने वाले चन्द्रप्रभ भगवान के गर्भावतारादि चार कल्याणक हुए हैं।

दो भगवान के जन्म और गंगोदक से गौरववती काशी नगरी किनके द्वारा प्रकाशित नहीं है? अर्थात् सभी ने इसका वर्णन किया है।

इस अनल्प समृद्धिवाली वाराणसी नगरी का कल्प श्रीमान् जिनप्रभसूरि मुनीन्द्र ने ग्रथित किया है।

वाराणसी नगरी का कल्प शेष हुआ, यह अक्षरगणना से ११३ श्लोक और २३ अक्षर अधिक है।

इस तीर्थकल्प में वाराणसी से सम्बन्धित अनेक जैनागमिक-पौराणिक कथानकों का उल्लेख है। अन्त में श्रीजिनप्रभसूरि जी ने अपने समय की वाराणसी के चार विभाग—१ देव वाराणसी, २ राजधानी वाराणसी ३ मदन वाराणसी ४ विजय वाराणसी बतलाए हैं। इनमें देव वाराणसी वह स्थान है जहाँ विश्वनाथ का मन्दिर है। उस समय इस मन्दिर में चौवीस तीर्थंकरों की पाषाणमय पट्ट-प्रतिमा पूजनीय थी। वे अपने चतुर्विंशति महातीर्थ नाम संग्रह कल्प में लिखते हैं—वाराणस्यां विश्वेश्वर मध्ये श्रीचन्द्रप्रभः" इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त चतुर्विंशति पट्टक में मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभ थे। राजधानी वाराणसी उस समय यवनों के अधिकार में थी। मदन वाराणसी को वर्त्तमान में मदनपुरा कहते हैं। विजय वाराणसी भी तत्कालीन उपनगर रहा होगा।

वि० सं० १३३४ में प्रभाचन्द्रसूरि ने 'प्रभावकचरित्र' की रचना की थी जिसमें पूर्वाचार्यों के २२ चरित्र है। उसके मानतुंगसूरि चरित्र से मालूम होता है कि सुप्रसिद्ध आचार्य श्री मानतुंगसूरि वाराणसी के सेठ धनपति के पुत्र थे। वे पहले मुनि चारुकीर्त्ति के पास दिगम्बर परम्परा में महाकीर्ति नाम से दीक्षित हुए। पर बाद में अपनी बहिन के द्वारा बोध पाकर श्वेताम्बराचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षित होकर बड़ी धर्म प्रभावना की। कवि मयूर और बाणभट्ट वाराणसी के राजा हर्षदेव के सभा पण्डित थे, इनके संबन्ध में इस चरित्र में पर्याप्त ज्ञातव्य है। राजा ने चमत्कार प्राप्ति के लिए आचार्य श्री को ४४ लौहशृंखला से बांध कर अंधेरी कोठड़ी में कैद कर लिया। सूरिजी ने भक्तामर काव्य की रचना द्वारा भगवान ऋषभदेव की स्तवना की जिसके एक एक काव्य से एक एक सांकल टूट गई और आचार्य श्री राजा के पास आकर उपस्थित हो गए। राजाने सूरिजी से प्रतिबोध पाया। आप का बहनोई लक्ष्मीधर सेठ भी वाराणसी निवासी था। आपकी दूसरी रचना भयहर स्तोत्र

भी बड़ा सप्रभाव है। आपके पट्टधर गुणाकरसूरि थे। पट्टावलियों में भक्तामर स्तोत्र की घटना मालवपति वृद्ध भोज से सम्बंधित है जो सातवीं शताब्दी में हुआ है। श्री हर्ष का यही समय (६६३-७०४) है जबकि अंचल पट्टावली में इन्हें तृतीय शताब्दी (स्वर्ग सं० २८८) में हुए लिखा है। एक मानदेवसूरि के पट्टधर और वीराचार्य के पट्ट-गुरु थे अतः मानतुंगसूरि नामके दो आचार्य संभवित है। इनका समय छठ्ठी-सातवीं शताब्दी होना चाहिए।

वर्त्तमान में वाराणसी तीर्थ की अवस्थिति इस प्रकार है—

भेलूपुर—यहाँ श्री पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म स्थान है। श्री जिनप्रभसूरि जी के समय में दन्तखात तालाव के निकट अन्तर्वन में अनेक प्रतिमाओं से विभूषित श्री पार्श्वनाथ भगवान का चैत्य था और यहाँ के तालावों में निर्मल परिमल से युक्त नाना जातिके कमलों की सुगंध व्याप्त थी और वे भ्रमर समूह संकुलित थे। यहाँ विशाल धर्मशाला, श्वेताम्बर-दिगंबर मन्दिर हैं एवं बगीचे के बीच में एक रमणीक दादावाड़ी है जिस में दादाजी महाराज के चरण प्रतिष्ठित हैं। इस की सुन्दर कोरणी युक्त जाली भक्तामर, कल्याणमन्दिर के श्लोकों के प्रतीक स्वरूप सुन्दर कलाकृतिमय कही जाती है। भेलूपुर में इस समय दो दिगम्बर मन्दिर और एक श्वेताम्बर मन्दिर एक ही स्थान में आसपास है। श्वेताम्बर मन्दिर की वेदी में दो एक दिगम्बर जिन प्रतिमा भी हैं जो प्राचीन काल की साम्प्रदायिक एकता की द्योतक है।

भदैनी घाट—यहाँ पर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के चार कल्याणक के जैन श्वेताम्बर व दिगम्बर मन्दिर हैं। राजा बच्छराज घाट पर गंगा की सतह से २५० फुट ऊपर सुवर्ण कलश सुशोभित श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का भव्य जिनालय है जिसके आगे विशाल चौक है। संगमर्मर की वेदी में प्रभुके कल्याणकों की स्मृति में जिनबिम्ब व चरण विराजमान है। राजा बच्छराज निर्मापित इस मन्दिर में एक लाल पत्थर का प्राचीन परिकर भी है जिसमें मूलनायक प्रतिमा नहीं है। इस जिनालय में नो पाषाणमय एवं एक धातु प्रतिमा है व दादा साहब की वेदी में चरण प्रतिष्ठित हैं। श्री जैन श्वे० तीर्थ कमेटी के अधीन इस मन्दिर की व्यवस्था है।

दिगम्बर जैन मन्दिर अलग है, स्याद्वाद महा विद्यालय आदि संस्थाएँ चलती हैं।

अब वाराणसी—काशी की गलियों और घाटों पर बने मन्दिरों का परिचय कराया जाता है—

१) श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथजी का मन्दिर—यह मन्दिर रामघाट पर विशाल और तीन मंजिला बना हुआ है। इसमें ५८ पाषाणमय व ७ धातु प्रतिमाएँ हैं। लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व उपाध्याय हीरधर्म गणि ने अपने विद्वान शिष्यों के सहित यहाँ पधार कर सारे तीर्थों की सुव्यवस्था की अयोध्या, रत्नपुरी, चन्द्रावती, सिंहपुरी तथा वाराणसी के तीर्थ व्यवस्था आप एवं आपके शिष्य परम्परा की महान् देन है। जब ब्राह्मणों का वर्चस्व था और रामघाट जैसे स्थान पर जैन मन्दिर का निर्माण अशक्य था। आपके शिष्य कुशलाजी महाराज ने अपनी विद्वत्ता से काशी नरेश पर प्रभाव डालकर शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त कर मन्दिर व उपाश्रय का निर्माण कराया था। यहाँ एक अच्छा ज्ञानभण्डार भी है। उपाध्याय हीरधर्म—कुशलाजी महाराज—श्री बालचन्द्राचार्य, श्री नेमिचन्द्राचार्य और श्री हीराचन्द्रसूरिजी आदि यतिजन विद्वान और त्याग वैराग्य सम्पन्न थे। उपरोक्त तीर्थों के अतिरिक्त मिर्जापुर आदि स्थानों में जिनालय प्रतिष्ठादि आप लोगों के द्वारा ही हुई और उत्तर प्रदेश के श्रावकों को धर्म में दृढ रखने का प्रशंसनीय कार्य किया। श्रीकाष्टजिह्वाचार्य रचित एक ग्रन्थ में इनके गुणों की प्रशस्ति देखी गई है। श्री हीराचन्द्रसूरिजी ने लाखों रुपये व तीर्थ व्यवस्था आनन्दजी कल्याणजी को सुपुर्द किए, अब उनके शिष्यादि कोई नहीं है। यहाँ की व्यवस्था स्थानीय ट्रष्टीगण करते हैं।

(२) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय—यह मन्दिर सूतटोले में है और सं० १९१८ में राजा वच्छराज नाहटा के वंशजों द्वारा निर्मापित है। मिती आषाढ़ कृष्ण २ को खरतरगच्छ नायक श्री जिनमुक्तिसूरिजी के कर-कमलों से इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। नाहटा लक्ष्मीचन्द्र के पुत्र दीपचन्द, फूलचन्द्र पौत्र मनोरथचन्द्र एवं धर्मपत्नी लक्ष्मीबीबी व पुत्री नानकी के बनवाए हुए जिन बिम्बों पर व धातु प्रतिमाओं पर श्री कुशलचन्दगणि के उपदेश से निर्माण व सं० १८९७ फाल्गुन सुदि ५ तथा सं० १९१८ आ० कृ० २ को श्री जिनमहेन्द्रसूरि व श्री जिनमुक्तिसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हैं। सन् १९२७ में नाहरजी ने इसे श्री शिखरचन्द्रजी का मन्दिर लिखा है। इस मन्दिर में सं० १३७२, १५११ और सम्वत १५०३ की प्रतिष्ठित ६ प्रतिमाएँ जौनपुर नगर के बाहर खेत में प्राप्त प्रतिमाओं को बाबू शिखरचन्दजी ने लाकर अपने इस मन्दिर में रखा है। नाहरजी ने जैन लेख संग्रह के प्रथम भाग में केवल दो पंचतीर्थियों के लेख प्रकाशित किए हैं। जौनपुर से प्राप्त प्रतिमाओं के तथा अन्य लेख द्वितीय भाग में प्रकाशित है।

कहा जाता है कि गंगातट से १०० गज की दूरी पर स्थित इस स्थान पर भगवान पार्श्वनाथ का दीक्षा कल्याणक हुआ था। इसका रजिष्ट्री उत्तर प्रदेश एक्ट सं० २१-१८६०के अन्तर्गत नं० १४५५ है और मूलगंभारे के तल से २६ फुट ऊँचे शिखर वाला यह मन्दिर है। वेदी व चतुर्दिग् ३२ स्तंभ व मध्यवर्त्ती महराव उच्च कोटि के कलापूर्ण है। वेदी के चतुर्दिग् प्रदक्षिणा व तीनों तरफ पद्मावती, भैरोंजी व दादा साहब के चरण विराजमान हैं। मन्दिर से संलग्न एक जैन धर्मशाला-उपाश्रय है।

(३) बट्टू जी का मन्दिर—यह श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर नया घाट पर बाबू बट्टूलालजी नाहटा का बनवाया हुआ है। इस में ८ पाषाणमय व ६ धातु प्रतिमाएँ हैं, दूसरे तीसरे तले पर प्रतिमाएँ है।

(४) श्री आदिनाथ जी का मन्दिर—बाबू मन्नुलाल जी के इस मन्दिर में ६ पाषाण एवं १८ धातु प्रतिमाएँ हैं।

(५) यति चुन्नी जी का मन्दिर—यह मन्दिर गणेश घाट पर तीसरे चौथे तल्ले पर है। इसकी देखरेख श्री जैन श्वे० सोसायटी बनारस के हस्तगत है। मूलनायक भगवान से १६७१ में प्रतिष्ठित सुपार्श्वनाथ है। यति चुन्नी जी महाराज का दीक्षा नाम चारित्रनन्दि था। इनके निर्माणकी हुई कई पूजाएँ व ग्रंथ उपलब्ध हैं। इनके शिष्य निधिउपाध्याय (नढाजी महाराज) व प्रशिष्य सुप्रसिद्ध योगिराज श्री चिदानन्दजी (कपूरचन्दजी) प्रथम थे जिनकी बहुत्तरी व स्वरोदय आदि रचनाएँ प्रसिद्ध है। यहाँ श्री चुन्नीजी महाराज का ज्ञान-भण्डार भी था जिसके ग्रंथ कुछ विजयधर्मसूरि जी ले गए व कुछ रामघाट मन्दिर के ज्ञानभंडार में रखे गए सुना है। इसमन्दिर में १६ पाषाण व धातु की ४ प्रतिमाएँ हैं।

(६) श्री आदिनाथजी का मन्दिर—यह मन्दिर श्रीयुत रामचन्द्रजी निर्मापित है। चौथे तल्ले पर ७ पाषाण ४ धातु व १ स्फटिक रत्न की प्रतिमा है।

(७) आदिनाथ जिनालय—यह बालूजी के फर्श में मुर्शिदाबाद निवासी राय धनपतसिंह कारित है। इसमें २१ पाषाण व ८ धातु की प्रतिमाएँ है। एक दादा साहब की प्रतिमा विराजमान है।

(८) श्री केशरियानाथ जी का मन्दिर—राजा उत्तमचन्द कारित यह मन्दिर ठठेरी बजार में है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के वंशज इनकी देखरेख रखते हैं। यहाँ १ पाषाण की और ११ धातु प्रतिमाएँ हैं।

(६) अंग्रेजी कोठी—श्रीपार्श्वनाथ भगवान के इस गृह चैत्यालय में ३ पाषाण व १ धातुमय प्रतिमा है सं० १६६२ में सेठ वीरचंद दीपचन्द ने इसका निर्माण कराया था, इसकी व्यवस्था आनन्दजी कल्याणजी पेठी के हाथ में है। श्री विजयधर्मसूरिजी महाराज के उपदेश से यहाँ यशोविजय जैन पाठशाला व ग्रंथमाला चालू हुई थी। यहाँ से कई नामांकित विद्वान तैयार हुए व कई ग्रंथों का प्रकाशन भी हुआ था।

नाहरजी ने लेखांक ४२२-२३ में वाराणसी में श्री प्रतापसिंह जी के मंदिर के दो पंचतीर्थी लेख प्रकाशित किए हैं। यह मन्दिर रामघाट पर उपर्युक्त मन्दिरों में से ही कोई है या भिन्न, पता नहीं।

सिंहपुरी—सारनाथ

वाराणसी से ६ मील पर यह स्थान ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ स्वामी की चार कल्याण भूमि है। यह स्थान सारनाथ स्टेशन के पास आधा मील पर हीरामनपुर गाँव के पास है। सारनाथ प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ है। बौद्ध साहित्य में इसका नाम इसिपत्तन मिलता है पर कब से सारनाथ कहलाने लगा, यह पता नहीं किन्तु भगवान श्रेयांसनाथ के नाथ से सारनाथ हो जाना असंभवित कल्पना नहीं है।

श्री अदीशचन्द्र वंदोपाध्याय का मत है कि भारत के प्राचीन तीर्थ स्थानों का महत्व निर्धारित करते समय बौद्ध धर्म के अतिशयोक्ति पूर्ण उल्लेखों को महत्ता दी गई है। अशोक व चीनी यात्रियों के विवरणों के प्रभाव से वहाँ जो अन्य धर्म वालों का प्राचीन प्रभाव था, अधिकार था वह समाप्त हो गया और राजनीति आदि अनेक कारणों से बौद्ध दृष्टिकोण केन्द्रित हो गया। वस्तुतः मिगदाव (सारनाथ) का रक्षित मृग उद्यान बुद्धकाल से पूर्व का है। बौद्ध जातक कथाओं में भारतीय अनेकों प्राचीन श्रुतियों को बुद्ध के पूर्वजन्म-बोधिसत्वों से काल्पनिक सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। सारनाथ में उत्खनन से प्राप्त अभिलेख जैन धर्म से सम्बन्धित है, उसमें लिखा है कि :—

> "धर्माशोक नराधिपस्य समये श्रीधर्मचक्रीजिनो
> यादृक् तन्नय रक्षितः पुनरयं चक्रेततोऽप्यद्भुते
> वी (वि?) हारः स्थविरस्य तस्य च तथा यत्नादयं कारितः
> तस्मिन्नेव समर्पितश्च वसता व चन्द्र चण्ड द्युतिः"

बौद्ध साहित्य में धर्मचक्री विषयक कोई उल्लेख नहीं है फिर भी कई विद्वान इसे बुद्ध-तथागत से सम्बन्ध जोड़ते हैं। धर्माशोक जैन सम्राट सम्प्रति

का ही नाम है। इसमें धर्मांशोक के द्वारा निर्मापित धर्मनाथ धर्मचक्र तीर्थंकर के विहार का स्पष्ट वर्णन है।

आज भी सुप्रसिद्ध स्तूप के हाते में दिगम्बर जैन मन्दिर बड़े विशाल रूप में विद्यमान है। यह मन्दिर अधिक प्राचीन जैन सम्बन्ध जोड़ने वाला अवश्य है। बौद्ध काल में जैन समाज शायद इससे विस्मृत हो गया था।

सिंहपुर का श्वेताम्बर जैन मन्दिर प्राचीन स्थान और वर्त्तमान रूप उपाध्याय हीरधर्मगणि के समय में जीर्णोद्धारित है। एक विशाल कम्पाउण्ड की छोटी सी धर्मशाला और जिनालय है। मध्य में समवशरण आकार वाला श्रेयांसनाथ केवलज्ञान जिनालय है जो सं० १८५७ चैत्र बदि ६ को गाँधी मयाचन्द आदि समस्त श्रीसंघ निर्मापित व उ० हीरधर्मगणि प्रतिष्ठित है। कोट के चारों कोनों में ऊपर नीचे गोलाकार चार-चार देहरियाँ बनी हुई है जिनमें भगवान के जीवन प्रसंग-चार कल्याणक उत्कीर्णित संगमर्मर पट्टिकाए व चरण पादुके विराजमान है। अग्नि कोणमें अधिष्ठायक देव है, नैऋत्य कोण की देहरी में भगवान की माता के चौदह स्वप्न युक्त भाव हैं। वायव्य कोण की देहरी में जन्म कल्याणक की स्थापना और ईशान कोण में दीक्षा कल्याणक की स्थापना है। अशोक वृक्ष के नीचे भगवान दीक्षा ले रहे हैं। नीचे की छत्री में च्यवन कल्याणक की स्थापना है। एक छत्री में मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक का दृश्य है। एक छत्री में दादा साहब की चरण पादुकाएँ और एक में श्री कुशलाजी महाराज की विशाल प्रतिमा है। ये कुशलाजी म० खरतर गच्छीय श्री हीरधर्मोपध्यायके प्रभावक शिष्य थे। सामने श्रेयांसनाथ जिनालय है जिसमें प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

श्री जिनप्रभसूरिजी ने तीर्थकल्प में धर्मेक्षा सन्निवेश में ऊँचे शिखरों वाले गगनचुंबी बौद्धायतन का वर्णन करके भी सिंहपुरी तीर्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है इससे मालूम होता है कि उस समय यह तीर्थ विच्छेद हो गया हो। क्योंकि उनके सौ वर्ष पश्चात् श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी ने भी वाराणसी यात्रा में पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रावती में चन्द्रप्रभ भगवान की यात्रा का उल्लेख किया है। किन्तु सं० १५६५ में अर्थात् उनके १०० वर्ष पश्चात् हंससोमगणि ने काशी से पूर्व की ओर दो कोश पर सीहपुर में श्रेयांसनाथ का जन्म स्थान लिखा है। सं० १६०६ में पुण्यसागर ने, सं० १६६१ में जयविजय ने उसी वर्ष वीरविजय और जसकीर्त्ति ने भी सिंहपुरी में प्रतिमा-पादुका वंदन पूजा का उल्लेख किया है। भयरव, कान्तिसुन्दर, सौभाग्यविजय, शील-

विजय, दयाकुशल आदि सभी कविगण सिंहपुरी की यात्रा करते हैं अतः गत पाँच सौ वर्षों से तीर्थयात्रा के अविच्छिन्न सम्बन्ध प्राप्त हैं।

बौद्ध साहित्य में इस इसिपत्तन स्थान का उल्लेख चौथी शताब्दी के चीनी यात्री फाहियान ने किया है। कहा जाता है कि छट्ठी शताब्दी के हूण मिहिर-कुल ने यहाँ आक्रमण किया था। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री हुएत्सांग ने यहाँ ३० बौद्ध विहार देखे थे जिसमें थेरवाद क अनुयायी १५०० भिक्षु गण रहते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ १०० हिन्दू मन्दिर थे। ग्यारहवी शताब्दी में महम्मद गजनी ने सारनाथ जीता था उसके बाद कन्नौज नरेश गोविंदचन्द की रानी कुमारदेवी ने, जो बौद्ध थी, यहाँ पर धर्मचक्र जिन विहार का निर्माण कराया था। सं० ११६४ में शहाबुद्दीन गौरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ने यहाँ के देवालयों को ध्वंश कर डाला था फिर भी दो विशाल स्तूप बच गए थे।

सारनाथ में ६० फुट ऊँचा व ३०० फुट घेराव वाला स्तूप तथा उत्खनन से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। इस स्थान का पिछले वर्षों में पर्याप्त प्रचार व विकास हुआ है। यहाँ अनेक संस्थाओं और भवनों का निर्माण हुआ है। जापान, तिब्बत, बर्मा की ओर से अपने अपने मन्दिर बने हुए हैं।

सिंहपुरी का जैन मन्दिर एक सात्विक और चमत्कारिक स्थान पर बना हुआ है इसके प्रचार की कमी से भारत व विदेशी पर्यटक लोग तो दूर, पूरे जैन यात्री भी लाभ नहीं उठा सकते। विकास की महती आवश्यकता है। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय स्थान के तीर्थ पर जैनों को अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए।

चन्द्रावती या चन्द्रपुरी

सारनाथ से ६ मील, वाराणसी से १४ मील और कादीपुर स्टेशन से २ मील चन्द्रपुरी नामक गाँव है जो चन्द्रावती कहलाता है। यहाँ आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ भगवान के चार कल्याणक हुए हैं। गंगा तटपर वसे इस गाँव का नदी तट बहुत गहराई में है। गाँव का रास्ता पार कर नदी तट की ओर जाते पहले दिगम्बर जैन मन्दिर और फिर श्वे० जैन मन्दिर बड़े कम्पाउण्ड में आता है। इसके पास ही दादा साहब के चरणों की स्थापना वाला मन्दिर था जो गंगानदी के कटाव में आकर ध्वस्त हो गया। गाँव में एक सुन्दर श्वे० जैन धर्मशाला है।

श्री जिनप्रभसूरिजी के विविध तीर्थकल्प में इस तीर्थ का उल्लेख है। उनके पश्चात् भी जिनवर्द्धनसूरि से लेकर सभी कवियों ने इस तीर्थ यात्रा का उल्लेख किया है। विजयसागर व सौभाग्यविजय के समय में जैनेतर लोग इस स्थान को चन्द्रमाधव कहा करते थे।

इस समय चन्दाप्रभुजी के चरण सं० १८६० प्रतिष्ठित व वाराणसी संघ कारित हैं। दादा साहब के चरण सं० १८८८ के हैं। जो फोफलिया वखतमल दिल सुखराय ने निर्माण करके जिनअक्षयसूरि पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित हैं। विजययक्ष और ज्वालादेवी को मूर्ति सं० १९१३ में काशी संघ निर्मापित है। दादाजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार सं० १९५२ में हुआ था। विश्राम स्थान का निर्माण लाला मन्नुलाल बुधसिंह चोरड़िया ने सं० १८९१ में कराया था।

सं० १८९४ में श्रीमाल फोफलिया खुशवखतराय दिलसुखराय ने चंद्रावती में धर्मशाला का निर्माण कराया था।

तीर्थमालाओं का उल्लेख

सं० १४६७ में श्री जिनवर्द्धनसूरिजी ने उत्तर प्रदेश और बिहार में ५-६ वर्ष विचरण किया और जौनपुर आदि में चातुर्मास किये थे। उन्होंने वाराणसी में पार्श्वनाथ स्वामी और सुपार्श्वनाथ स्वामी के शिखरबद्ध मन्दिरों का उल्लेख किया है। नदी तट पर स्थिति विशाल नगरी चन्द्रावती में भी उन्होंने चन्द्रप्रभु भगवान् की यात्रा की थी।

हंससोमकृत चैत्यपरिपाटी (सं० १५६५) में लिखा है कि जूनीकाशी में अश्वसेन राजा का घर था। पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के स्तूप अत्यन्त रम्य हैं। यहाँ उभय तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने से इन्द्र द्वारा निर्मित सकल तीर्थ जलयुक्त कूप है। कमठ तापस का तपस्या स्थल और मनकेसर तीर्थ गंगातट पर है। यहाँ पर राजा हरिश्चन्द्र ने अपना सत्य वचन पालन किया था। पूर्वी मार्गपर दो कोश सिंहपुरी है जहाँ श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ और वहाँ से पाँच कोश चन्द्रावती, चन्द्रप्रभ भगवान की जन्मभूमि है जहाँ प्रतिमा और स्तूप है।

सं० १६०९ में पुण्यसागर ने पार्श्वनाथ-सुपार्श्वनाथ जिनालय व जूनी काशी में जन्मस्थान व कमठ तप-स्थल होने व सिंहपुरी में श्रेयांस जन्म व चन्द्रावती में चन्द्रप्रभ जन्मस्थान में संघपति द्वारा चरण स्थापना कराने का उल्लेख है।

कवि भयरव ने चन्द्रपुरी में चन्द्रप्रभ पादुका, वहाँ छः कोश दूर सिंहपुरी में श्रेयांसनाथ पादुका का उल्लेख कर वाराणसी में पार्श्वनाथ तीर्थंकरों की जन्म भूमि की यात्रा की लिखा है।

सं० १६६१ में वीरविजय लिखते हैं कि सूरजकुण्ड के पास १९ दिन साह हीरानन्द के संघ का पड़ाव रहा। वाराणसी में गंगा वहती है और पार्श्वनाथ-सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि और सिंहपुरी में श्रेयांस व लौटते समय चन्द्रपुरी में चन्द्रप्रभुजी की चरण-वंदना की।

दयाकुशल ने वाराणसी में पार्श्वनाथ-सुपार्श्वनाथ व श्रेयांसनाथ सिंहपुरी में तथा चन्द्रपुरी में चन्द्रप्रभ की पूजा की। पुराने नगर के अधिस्थान देखे।

सं० १६६४ में जयविजय लिखते हैं कि पार्श्व-सुपार्श्व के उभय जन्म-स्थानों में दो जिनालय हैं। पहले चौमुख जी की पूजाकर फिर चरणपादुका वंदन किया। पार्श्वनाथ प्रतिमा बड़ी मनोहर है। नगर में देखें तो इतनी प्रतिमाएँ ब्राह्मणों के आँगन में और मठों में है। यहाँ से तीन कोस सिंहपुरी श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि अनुपम स्थान है वहाँ प्रतिमा और चरणपादुका है। चन्द्रपुरी में चन्द्रप्रभ के जन्मस्थान में चरणपादुका है।

सं० १६६६ में कवि जसकीर्त्ति लिखते हैं कि पार्श्वनाथ सुपार्श्वनाथ जन्म स्थान तीर्थ के अतिरिक्त विश्वनाथ मन्दिर के पास पाँच प्रतिमाएँ, ऋषभदेव के पास नेमिनाथ हैं। अन्नपूर्णा के पास पार्श्वनाथ प्रतिमा है खमणावसही में बहुत सी प्रतिमाएँ भविजन पूजते हैं। वाराणसी में रक्त वर्ण की पार्श्वनाथ प्रतिमा की चन्दन, केसर और पुष्पादि से पूजा की। ऋषभदेव के पास चन्द्रप्रभ, वर्द्धमान चौमुखजी की पूजा करो। भद्दिलपुर (? भदैनीघाट) में सुपार्श्वनाथ की पूजाकर नौका द्वारा डेरे पर आये। पटोद्घोषणा करने से अगणित याचक और ब्राह्मण लोग आ गए जिन्हें दान देने के लिए बोरे भरभर के बैठे। सिंहपुरी व चन्द्रावती की यात्रा कर संघपति ने तीसरी कड़ाई-साधर्मीवत्सल किया। फिर मुगलसराय, मोहिनीपुर और माम्भरपुर होकर आगे बढ़े।

कवि विजयसागर यहाँ दोनों तीर्थंकरों की जन्मभूमि में ३ मन्दिर और पादुकाओं की पूजा की लिखते है और वे कहते हैं कि यहाँ पग पग पर जिन प्रतिमाएँ हैं और शिवलिंग तो अंगणित है। यहाँ का विस्तृत वर्णनकर लिखते हैं कि सिंहपुरी में श्रेयांसनाथ के नये व पुराने जो चैत्यों में पादुका प्रतिमा है और सिंह समीप से सेवा करता है, लिखा है जो सारनाथ के सिंह स्तंभ का संकेत मालुम देता है। चन्द्रपुरी चार कोश है जहाँ चौतरे पर चन्द्रप्रभ भगवान के चरणों की पूजा की वहाँ की जनता उसे चन्द्रमाधव कहती है।

शीलविजय पार्श्वनाथ जन्म स्थल को भिलुपुर कहते हैं। सं० १७११-१२ में इन्होंने वाराणसी व सिंहपुरी चन्द्रावती की यात्रा की थी।

कवि सौभाग्यविजय लिखते हैं कि यहाँ वरणा और आशा नदी है। दोनों के बीच नगरी है। पाखण्डी लोग प्रतिदिन गंगा स्नान करते हैं और हर हर करते शिवलिंग पूजते हैं। ब्रह्मा व गणेश की पूजा करते हैं। वे लोग कहते हैं यहाँ कौआ भी मर के मोक्ष जाता है ये सब मिथ्यात्व की मातें हैं। भगवान पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि होने से पवित्र तीर्थ हैं। प्रथम

गुण स्थानीय जनता जैनों के निन्दक हैं। सिंहपुरी में श्रेयांसनाथ की चरण वंदना पूर्ण कर चन्द्रपुरी में चंद्रप्रभ भगवान की जन्मभूमि गए, यहाँ की जनता उन्हें चन्द्रमाधव कहती है।

कवि कान्तिसुन्दर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के जन्म स्थान लिखते हैं। जहाँ स्तूप-थुंभ है, भिलुकपुर में जिन प्रतिमाओं की पूजा की। श्रावक के देहरासर में भी पार्श्वनाथ हैं। मठ-मन्दिर आदि से मण्डित यह सुन्दर नगरी है।

सं० १६३० में हरकोर सेठानी व उमाभाई का संघ रेल द्वारा अहमदाबाद से आया था समेतशिखर ढालियों में माघ बदि २ को वाराणसी में खरतर गच्छ वालों द्वारा अंजनशलाका होने का उल्लेख है। जाते समय यह संघ इलाहाबाद से ५ दिन में गया और समेतशिखरजी से लौटते फिर चारों तीर्थंकरों के १६ कल्याणक भूमि-तीर्थों की यात्रा की, वाराणसी में और भी ६ मन्दिर लिखे हैं।

इस प्रकार शताब्दी पूर्व तक के यात्रा वर्णनों का सार है।

सुप्रसिद्ध विद्वान उपाध्याय यशोविजयजी महाराज ने वाराणसी में ही पधार कर न्याय-शास्त्र का अध्ययन किया था। खरतरगच्छ पट्टावली में लिखा है कि खरतरगच्छ नायक श्री जिनलाभसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचंद्रसूरि जी वाराणसी पधारे और समस्त तीर्थों की यात्रा कर राजा वच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ चातुर्मास किया। सुविहित साधु-यतिजनों के विहार के अभाव में फैले हुए जिन प्रतिमोत्थापक मत का युक्तिपूर्वक निराकरण कर लोगों को सन्मार्ग में लाकर श्रद्धालु बनाये। राजा वच्छराज ने दादा श्रीजिनकुशलसूरि का स्तूप निर्माण कराया। सं० १८६३-६४ के राजा वच्छराज के अभिलेख संप्राप्त है।

श्रीजिनहर्षसूरिजी द्वारा अयोध्या के मूलनायक अजितनाथ भगवान के बिम्ब की प्रतिष्ठा वाराणसी में सं० १८७१ माघ सुदि ३ को श्रीमाल टांक श्रावकों के द्वारा श्री हीरधर्मोपाध्याय के उपदेश से कराने का उल्लेख है। इस समय श्री जिनहर्षसूरि ने कलकत्ता मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी। अतः वाराणसी की प्रतिष्ठा में संवत् का अन्तर होना चाहिए अथवा उनकी आज्ञा से अन्य यति-जन द्वारा प्रतिष्ठा कराई गई हो।

वाराणसी भारत का प्रसिद्ध पावन तीर्थ है। जैन दृष्टिकोण से यहाँ यत्किंचित् प्रकाश डाला गया है। आशा है विद्वानों को विशेष शोध की ओर अग्रसर करेगा।

श्री जैन संस्कृति कला-मन्दिर द्वारा प्रकाशित एवं प्राप्य ग्रन्थादि

१—सम्मेतशिखर (लेखक— महेन्द्र सिंघी) १३० चित्रसह
प्रस्तावना—भँवरलाल नाहटा आधा मूल्य ६) रु०

२—श्री पावापुरी १६ रंगीन, १६ इकरंगे चित्र युक्त (लेखक महेन्द्र सिंघी)
प्रस्तावना—विजयसिंह नाहर आधा मूल्य ५.५०) रु०

३—राजगृह (लेखक—भँवरलाल नाहटा) सचित्र अप्राप्य मूल्य २) रु०

४—क्षत्रियकुण्ड (लेखक—अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा)
सचित्र मूल्य ७५ पै०

५—कुण्डलपुर (नालंदा) लेखक—भँवरलाल नाहटा सचित्र मूल्य ७५ पै०

६—चम्पापुरी (लेखक—भँवरलाल नाहटा) सचित्र मूल्य ७५ पै०

७—पूर्व भारत के जैन तीर्थों की मनोरम फोटो चित्रावली ५०
चित्र मूल्य ७५ पै०

८—श्री भोमियाजी का रंगीन चित्र मूल्य २) रु०

९—वाराणसी (लेखक—भँवरलाल नाहटा) मूल्य ७५ पै०

प्राप्ति स्थान

श्री जैन संस्कृति कला-मन्दिर

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,